□ मुनि श्री मोहनलाल जी 'सुजान'
(तेरापंथ जैन संघ के विद्वान संत एवं कवि)

अक्षरविज्ञान : एक अनुशीलन

□

वर्णमाला का प्रत्येक अक्षर भावों को अभिव्यक्त करने का प्रमुख साधन है। मानव जाति के विकास के साथ-साथ वर्णमाला का भी विकास होता आया है। प्रायः ऐतिहासिक मान्यतानुसार वर्णमाला के निर्धारण के पूर्व भावाभिव्यक्ति का संकेत ही एकमात्र साधन था। सांकेतिक भावाभिव्यक्ति का भी बहुत बड़ा महत्व रहा है। मानव सभ्यता के जन्म के पश्चात् ही वर्णमाला का निर्धारण हुआ ऐसा प्रतीत होता है। जैन मान्यतानुसार भगवान श्री ऋषभनाथ ने सर्वप्रथम ब्राह्मी और सुन्दरी नामक अपनी दोनों पुत्रियों को अंकगणित और वर्णमाला की कलायें सिखाई थीं। वे कलायें ही परम्परानुक्रम आगे से आगे विकसित बनीं। विविध लिपियों के माध्यम से उनका विकास हुआ। जैन शास्त्रकारों ने वर्णों को द्रव्यश्रुत कहा है तथा ज्ञानप्राप्ति का मुख्य आधार माना है। आत्म-ज्ञान क्षयोपशमजन्य है। वह अक्षर-ज्ञान ही प्रयत्न विशेष से आत्मज्ञान के रूप से परिणत हो जाता है।

वर्णमाला और मनोवृत्ति—देवनागरी लिपि के अक्षरों के आकार और उच्चारण भी विशेष अर्थ-सूचक तथा भिन्न-भिन्न विशेषतायें लिए होते हैं। सभी अक्षरों की भिन्न-भिन्न मातृका-ध्वनियाँ भी होती हैं। इस वर्णमाला में उच्चारण के अनुरूप ही आकार निर्धारण किया गया है। प्रत्येक अक्षर के आकार में आये हुए विभिन्न प्रकार के घुमाव, मोटापन तथा पतलापन में उच्चारण के साथ समताल का ध्यान भी रखा गया है। इसलिए ही इस वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर विशेष शक्तिसूचक तथा मन्त्ररूप में प्रयुक्त होने वाले अक्षर हैं। मनोवैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर भी इस वर्णमाला के अक्षरों का अपना प्रमुख स्थान है। मानव जीवन की मूल-प्रवृत्तियों के साथ इस वर्णमाला के अक्षरों का बहुत कुछ यथार्थभाव सिद्ध होता है। मनुष्य की भावनाओं तथा मूल-प्रवृत्तियों का संयोजन अक्षर के विराट रूप शब्दों के माध्यम में ही ठीक-ठीक बन पाता है। क्योंकि शब्दोच्चारण ही मनुष्य की मूल-प्रवृत्तियों को व्यवस्थित बनाता है तथा मनोगत भावों का शुद्धिकरण करता है। मनोगत भावों की शुद्धि के लिए मनोवृत्ति को जानना जरूरी है, शब्दों के उच्चारणों की विधि तथा वर्णमाला का रहस्य जानना भी जरूरी है।

स्थायी भावों का आधार—मनुष्य की दृश्य क्रियायें उसके चेतन मन में होती हैं और अदृश्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रियायें अवचेतन मन में होती हैं। इन दोनों प्रकार की क्रियाओं को मनोवृत्ति कहा जाता है। साधारणतः तो मनोवृत्ति शब्द चेतन मन की क्रिया के बोध के लिए ही प्रयुक्त होता है। परन्तु वस्तुतः यह नहीं है। प्रत्येक मनोवृत्ति के तीन पहलू हैं—ज्ञानात्मक, वेदनात्मक और क्रियात्मक। मनोवृत्ति के इन तीनों पहलुओं को एक-दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता। क्योंकि मनुष्य को जो कुछ ज्ञान होता है, उसके साथ वेदना और क्रियात्मक भाव की भी अनुभूति होती है। ज्ञानात्मक मनोवृत्ति के संवेदन, प्रत्यक्षीकरण, स्मरण, कल्पना और विचार ये पाँच रूप होते हैं। संवेदनात्मक के संवेग, उमंग, स्थायीभाव और भावना-ग्रन्थि ये चार रूप होते हैं। क्रियात्मक मनोवृत्ति के सहज क्रिया, मूलवृत्ति, आदत, इच्छित क्रिया और चरित्र ये पाँच रूप होते हैं। मनोवृत्ति के इन विविध रूपों का शुद्धिकरण ही जीवन का शुद्धिकरण है, व्यवहार का शुद्धिकरण है। मन की प्रत्येक प्रवृत्ति वचन और काया से सम्बन्धित होती है। वचन द्वारा बोले जाने वाले शब्द तथा काया द्वारा की जाने वाली क्रियायें ही मन को अपनी ओर आकर्षित करती हैं; केन्द्रित करती हैं। ज्ञानकेन्द्र और क्रिया-केन्द्रों का समन्वय होने से भी मानव मन सुदृढ़ होता है। मन की सुदृढ़ता ही उसके चरित्र की उन्नायक है तथा उसके स्थायी भावों का आधार है।

शब्द-शक्ति का मूल—मनुष्य का चरित्र उसके स्थायी भावों का समुच्चय मात्र है। जिस मनुष्य के स्थायी भाव जिस प्रकार के होते हैं, उसका चरित्र भी उसी प्रकार का होता है। मनुष्य का परिमार्जित और आदर्श स्थायी भाव ही हृदय की अन्य प्रवृत्तियों का नियन्त्रण करता है। जिस मनुष्य के स्थायी भाव सुनियन्त्रित नहीं तथा जिसके मन में उच्च आदर्शों के प्रति स्थायी भाव नहीं है, उसका व्यक्तित्व सुगठित तथा उसका चरित्र सुन्दर नहीं हो सकता। सुगठितता व चरित्रशीलता का शब्दों के उच्चारण के साथ बहुत गहरा सम्बन्ध है। शब्दशक्ति का अपना अचूक प्रभाव होता है। मनुष्य के द्वारा की जाने वाली अनेकानेक प्रवृत्तियाँ आदमी द्वारा समुच्चारित शब्दों का ही प्रतिबिम्ब हैं। मनोवैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर इन प्रवृत्तियों में से भोजन ढूंढ़ना, भागना, लड़ना, उत्सुकता, रचना, संग्रह, विकर्षण, शरणागत होना, कामप्रवृत्ति, शिशु-रक्षा, दूसरों की चाह, आत्म-प्रकाशन, विनीतता और हँसना, ये चौदह मूल-प्रवृत्तियाँ हैं। इन मूल-प्रवृत्तियों का अस्तित्व संसार के सभी प्राणियों में पाया जाता है। परन्तु मनुष्य की ही यह विशेषता है कि वह इन मूल-प्रवृत्तियों में समुचित परिवर्तन कर लेता है। अन्यथा केवल मूल-प्रवृत्तियों द्वारा संचालित जीवन असभ्य और पाशविक जीवन कहलाता है। इसलिए इन मूल-प्रवृत्तियों में Repression दमन, Inhibition विलयन, Redirection मार्गान्तरीकरण और Sublimation शोधन, ये परिवर्तन होते रहते हैं। ये परिवर्तन सहज व स्वाभाविक हैं फिर भी शब्दशक्ति से बहुत प्रभावित रहते हैं। उदाहरणतया कम्पन शब्द के श्रवण, मनन, चिन्तन तथा जल्पन के साथ ही कम्पन की क्रिया सहज होने लगती है। भयात्मक शब्द के श्रवण, मनन, चिन्तन व जल्पन के साथ ही भयात्मक स्थिति बनने लगती है। इसलिए ये परिवर्तन भी शब्दरचना से सम्बन्धित रहते हैं। शब्दशक्ति का मूल वर्णमाला का आकार-प्रकार है, द्रव्यश्रुत का आधार है।

गणित के द्वार पर श्रुतज्ञान—श्रुतज्ञान के दो प्रकार होते हैं—द्रव्यश्रुत और भावश्रुत; अक्षर रूप ज्ञान के आत्मभाव को भावश्रुत कहते हैं। इस ज्ञान के आत्मभावों के अनुरूप ही विधायें होती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्यश्रुत; अक्षर रूप ज्ञान को द्रव्यश्रुत कहते हैं। उन अक्षर रूप ६४ अनादि मूलवर्णों को लेकर समस्त श्रुतज्ञान के अक्षरों का प्रमाण निम्न प्रकार निकाला जा सकता है। गाथासूत्र निम्न प्रकार है—

चउसट्ठिपयं विरलिय दुगं दाऊण सगुणं किच्चा।
सऊणं च कए पुण सुदणाणस्सक्खरा होंति ॥

अर्थ—चौसठ अक्षरों का विरलन करके प्रत्येक के ऊपर दो का अंक देकर परस्पर सम्पूर्ण दो के अंकों का गुणा करने से लब्ध राशि में एक घटा देने से जो प्रमाण रहता है, उतने ही श्रुतज्ञान के अक्षर होते हैं। इन अक्षरों का प्रमाण गाथा में निम्न प्रकार कहा गया है—

एकट्ठ च चय छस्सत्तयं च च य सुण्णसत्ततिय सत्ता।
सुण्णं णव पण पंच य एक्कं-छक्केक्कगो य पणयं च ॥

अर्थ—एक, आठ, चार, चार, छह, सात, चार-चार, शून्य, सात, तीन, सात, शून्य, नव, पंच, पंच, एक, छह, एक, पाँच इतने श्रुतज्ञान के अक्षर हैं।

मातृका ध्वनियाँ :—एक दिग्दर्शन—ज्ञान की अमित शक्ति वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर में छिपी हुई है। वर्णमाला में स्वर संख्या १६ तथा व्यंजन संख्या ३५ है। सभी अक्षरों की मातृका ध्वनियाँ हैं। जयसेन प्रतिष्ठापाठ में बतलाया गया है—

अकारादि क्षकारान्ताः, वर्णा प्रोक्तास्तु मातृकाः।
सृष्टिन्यासः, स्थितिन्यासः, संहृतिन्यासतस्त्रिधा ॥ ३७६ ॥

अर्थ—अकार से लेकर क्षकार (क्+ष्+अ) पर्यन्त मातृका वर्ण कहलाते हैं। इनका तीन प्रकार का क्रम है—सृष्टिक्रम, स्थितिक्रम और संहारक्रम। इन तीनों क्रमों में आत्मानुभूति की स्थिति के साथ लौकिक अभ्युदय का निर्माण तथा असत् का संहार जुड़ा हुआ रहता है। वर्णमाला का प्रत्येक अक्षर बीज-संज्ञक है। बीजाक्षरों की निष्पत्ति के सम्बन्ध में बताया गया है—"हलो बीजानि चोक्तानि, स्वराः शक्तय इरिताः" अर्थात् ककार से हकार पर्यन्त व्यंजन बीजसंज्ञक हैं और अकारादि स्वर शक्ति रूप हैं। मन्त्र बीजों की निष्पत्ति बीज और शक्ति के संयोग से होती है। सारस्वतबीज, मायाबीज, भुवनेश्वरीबीज, पृथ्वीबीज, अग्निबीज, प्रणवबीज, मारुतबीज, जलबीज, आकाशबीज आदि की उत्पत्ति उपरोक्त हल् और अचों के संयोग से होती है। बीजों का सविस्तार वर्णन बीजकोश में वर्णित है, परन्तु यहाँ पर सामान्य जानकारी के लिए ध्वनियों की शक्तियों का दिग्दर्शन कराया जाता है।

अ—अव्यय, व्यापक, आत्मा के एकत्व का सूचक, शुद्ध-बुद्ध ज्ञानरूप, शक्ति द्योतक, प्रणय-बीज का जनक।

आ—अव्यय, शक्ति और बुद्धि का परिचायक, सारस्वतबीज का जनक, मायाबीज के साथ कीर्ति, धन और आशा का पूरक।

इ—गत्यर्थक, लक्ष्मी प्राप्ति का साधक, कोमल कार्य साधक, कठोर कर्मों का बाधक, वह्नि-बीज का जनक।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ई—अमृत बीज का मूल, कार्य-साधक, अल्प-शक्ति द्योतक, ज्ञानवर्धक, स्तम्भक, मोहक, जृम्भक।

उ—उच्चाटन बीजों का मूल, अद्भुत शक्तिशाली, श्वासनलिका द्वारा जोर का धक्का देने पर मारक।

ऊ—उच्चाटक और मोहक बीजों का मूल, कार्यध्वंस के लिए शक्तिदायक।

कृ—ऋद्धि बीज, सिद्धिदायक बीजों का मूल।

बृ—सत्य का संचारक, वाणी का ध्वंसक, लक्ष्मी बीज की उत्पत्ति का कारण।

ए—निश्चल, पूर्ण, गतिसूचक, अनिष्ट निवारण बीजों का जनक।

ऐ—उदात्त, उच्च स्वर का प्रयोग करने पर वशीकरण बीजों का जनक, जल बीज की उत्पत्ति का कारण, शासन देवताओं को आह्वान करने में सहायक, ऋणविद्युत का उत्पादक।

ओ—अनुदात्त—निम्न स्वर की अवस्था में माया बीज का जनक, उदात्त—उच्च स्वर की अवस्था में कठोर कार्यों का जनक बीज, रमणीय पदार्थों की प्राप्ति हेतु प्रयुक्त होने वाले बीजों का अग्रणी, अनुस्वारान्त बीजों का सहयोगी।

औ—मारण और उच्चाटन सम्बन्धी बीजों के प्रधान, शीघ्र कार्य साधक, निरपेक्षी।

अं—स्वतन्त्र शक्ति रहित, कर्माभाव के लिए प्रयुक्त ध्यान मन्त्रों में प्रमुख, शून्य या अभाव का सूचक, आकाश बीज का मूल, अनेक मृदुल शक्तियों का उद्घाटक लक्ष्मी बीजों का मूल।

अः—शान्ति बीज का जनक, निरपेक्षावस्था में कार्य असाधक, सहयोगी का अपेक्षक।

क—शक्ति बीज, प्रभावशाली, सुखोत्पादक, कामबीज का जनक।

ख—आकाश बीज, अभाव कार्यों की सिद्धि के लिए कल्पवृक्ष।

ग—पृथक् करने वाले कार्यों का साधक, प्रणव और माया बीज के कार्य सहायक।

घ—स्तम्भक बीज, मारण और मोहक बीजों का जनक।

ङ—शत्रु का विध्वंसक, स्वर मातृका बीजों के सहयोगानुसार फलोत्पादक।

च—अंगहीन, खण्डशक्ति द्योतक, उच्चाटन बीज का जनक।

छ—छाया सूचक, मायाबीज का सहयोगी, आपबीज का जनक।

ज—नूतन कार्यों का साधक, आधि-व्याधि का शामक, आकर्षकबीजों का जनक।

झ—रेफ युक्त होने पर कार्य साधक, श्रीबीजों का जनक।

ञ—स्तम्भक और मोहक बीजों का जनक, साधना का अवरोधक।

ट—बह्निबीज, आग्नेय कार्यों का प्रसारक और निस्तारक।

ठ—अशुभ सूचक बीजों का जनक, क्लिष्ट और कठोर कार्यों का साधक, अशान्ति का जनक, सापेक्ष होने पर द्विगुणित शक्ति का विकासक, बह्नि बीज।

ड—शासन देवताओं की शक्ति का प्रस्फोटक, निकृष्ट आचार-विचार द्वारा साफल्योत्पादक, अचेतन क्रिया साधक।

ढ—निश्चल, माया बीज का जनक, मारण बीजों में प्रधान।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ण—शान्ति सूचक, आकाश बीजों में प्रधान, शक्ति का स्फोटक।

त—आकर्षक बीज, शक्ति का आविष्कारक, सारस्वत बीज के साथ सर्वसिद्धिदायक।

थ—मंगल साधक, लक्ष्मी बीज का सहयोगी, स्वर मातृकाओं के साथ मिलने पर मोहक।

द—कर्मनाश के लिए प्रधान बीज, वशीकरण बीज का जनक।

ध—श्रीं और क्लीं बीजों का सहायक, मायाबीज का जनक।

न—आत्मसिद्धि का सूचक, जल तत्व का स्रष्टा, मृदुतर कार्यों का साधक।

प—परमात्मा का दर्शक, जलतत्व के प्राधान्य से युक्त।

फ—वायु और जल तत्व युक्त, स्वर और रेफ युक्त होने पर विध्वंसक, फट् की ध्वनि से युक्त होने पर उच्चाटक।

ब—अनुस्वार युक्त होने पर समस्त प्रकार के विघ्नों का विघातक।

भ—सात्विक कार्यों का निरोधक, परिणत कार्यों का तत्काल साधक, साधना में नाना प्रकार के विघ्नोत्पादक, कटु मधु वर्णों से मिश्रित होने पर अनेक प्रकार के कार्यों के साधक, लक्ष्मीबीजों का विरोधी।

म—सिद्धिदायक, लौकिक और पारलौकिक सिद्धियों का प्रदाता।

य—शान्ति तथा ध्यान का साधक, मित्र प्राप्ति या किसी अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिए अत्यन्त उपयोगी।

र—अग्निबीज, समस्त प्रधान बीजों का जनक, शक्ति का प्रस्फोटक, वर्द्धक।

ल—लक्ष्मी प्राप्ति में सहायक, श्री बीज का निकटतम सहयोगी और सगोत्री।

व—ह्, र्, और अनुस्वार के संयोग से चमत्कारों का उत्पादक, सारस्वत बीज, भूत-पिशाच, डाकिनी-साकिनी की बाधा का विनाशक, रोग व विपत्तियों का हर्त्ता स्तम्भक।

श—निरर्थक, सामान्य बीजों का जनक, उपेक्षा धर्मयुक्त, शान्ति का पोषक।

ष—आह्वान बीजों का जनक, अग्नि स्तम्भक, जल स्तम्भक, सापेक्ष ध्वनि ग्राहक, सहयोग या संयोग द्वारा विलक्षण कार्यसाधक, रुद्र बीजों का जनक, भयंकर-बीभत्स कार्यों के लिए कार्यसाधक।

स—सर्व समीहित साधक, क्लीं बीज का सहयोगी, काम बीज का उत्पादक।

ह—शान्ति-पौष्टिक और मांगलिक कार्यों का उत्पादक, आकाश तत्वयुक्त, सभी बीजों का जनक, साधना के लिए परमोपयोगी, स्वतन्त्र और सहयोगापेक्षी लक्ष्मी तथा सन्तान की उत्पत्ति में साधक।

संयोजन दुर्लभ है—उपर्युक्त ध्वनियों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि मातृका मन्त्र ध्वनियों के स्वर और व्यंजनों के संयोग से ही समस्त बीजाक्षरों की उत्पत्ति हुई है। ये बीजाक्षर ही मन्त्र शक्ति का सामर्थ्य रखते हैं। नीतिकारों ने कहा है—

"अमंत्रं अक्षरं नास्ति",—कोई भी अक्षर अमंत्र नहीं है। मंत्रशक्ति का मूल आधार अक्षर ही है। ज्ञानाभाव के कारण उस शक्ति का प्रतिफल असम्भाव्य भी हो सकता है परन्तु उस स्थिति में शक्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की उपादेयता निकारी नहीं जा सकती। वस्तुस्थिति का ज्ञान ही प्रतिफल का मूल कारण होता है। ऊपर बतायी हुई अक्षरों की शक्तियाँ आध्यात्मिक व भौतिक दोनों प्रकार की हैं। ये शक्तियाँ अन्तर्द्रष्टा के लिए जहाँ ऊँचे से ऊँचा मार्गदर्शन कर सकती हैं वहाँ बाह्य जगत में विहरण करने वालों के लिए भी बहुत कुछ मार्गदर्शन कर सकती हैं परन्तु दोनों ही स्थितियों के लिए यथार्थ ज्ञान अपेक्षित है। जैसे प्रकाश के अभाव में पड़ी हुई वस्तु भी उपयोगी नहीं बन सकती, वैसे ही यथार्थ ज्ञान के अभाव में शक्तियों का प्रतिफल पाना अशक्य है। इसीलिए तो कहा है—"**योजकस्तत्र दुर्लभः**"—वस्तु का अभाव नहीं, वस्तु की प्राप्ति दुर्लभ है, संयोजन दुर्लभ है। मंत्र-शक्ति अक्षरों की संयोजना का रूप है, श्रुतज्ञान की साक्षात्कार उपलब्धि है।

बीजाक्षरों का सामर्थ्य—मन के साथ जिन ध्वनियों का घर्षण होने से दिव्य ज्योति प्रकट होती है उन ध्वनियों के समुदाय को मंत्र कहा जाता है। मंत्र शब्द का दूसरा अर्थ है—मन्धातु (दिवादि ज्ञाने) से त्र प्रत्यय लगाकर बनाया जाता है। इसका व्युत्पत्ति के अनुसार अर्थ होता है—"**मन्यते ज्ञायते आत्मादेशोऽनेन इति मंत्रः**" अर्थात् जिसके द्वारा आत्मा का आदेश—निजानुभव जाना जाय वह मंत्र है। मंत्र और विज्ञान दोनों में बड़ा अन्तर है, क्योंकि विज्ञान के प्रयोग का एक ही प्रतिफल निकलता है, जबकि मंत्र की यह स्थिति नहीं है, उसकी सफलता साधक और साध्य पर निर्भर है, ध्यान के अस्थिर होने से भी मंत्र असफल हो जाता है। मंत्र तभी सफल होता है जहाँ श्रद्धा, इच्छा और दृढ़ संकल्प ये तीनों ही यथावत् कार्य करते हों। मनोविज्ञान का सिद्धान्त है कि मनुष्य के अवचेतन मन में बहुत-सी आध्यात्मिक शक्तियाँ भरी रहती हैं, इन्हीं शक्तियों को मंत्र द्वारा प्रयोग में लाया जाता है। मंत्र की ध्वनियों के संघर्षण द्वारा आध्यात्मिक शक्ति को उत्तेजित किया जाता है। इस कार्य में अकेली विचारशक्ति ही काम नहीं करती है, इनकी सहायता के लिए उत्कट इच्छा शक्ति के द्वारा ध्वनि-संचालन की भी आवश्यकता होती है। मंत्रशक्ति के प्रयोग की सफलता के लिए मानसिक योग्यता प्राप्त करनी पड़ती है, जिसके लिए नैष्ठिक आचार की भी आवश्यकता होती है। मंत्र निर्माण के लिए ॐ, ह्रां, ह्रीं, ह्रूं ह्रौं, ह्रः, हा, ह, सः क्लीं क्लूँ ट्रा, ट्रीं, ट्रः श्रीं क्षीं क्ष्वीं, क्वीं हं अं, फट्, वषट्, सर्वौषट्, धे, धै, यः ठः खः ह, ल्वर्यं पं बं यं झं तं थं दं आदि बीजाक्षरों की आवश्यकता होती है। साधारण व्यक्ति के लिए ये बीजाक्षर निरर्थक प्रतीत होते हैं, किन्तु ये सभी सार्थक हैं और इनमें ऐसी शक्ति अन्तर्निहित है कि जिसमें आत्मशक्ति या देवताओं को उत्तेजित किया जा सकता है। अतः ये बीजाक्षर अन्तःकरण और वृत्ति की शुद्ध प्रेरणा के व्यक्त शब्द हैं जिनसे आत्मविकास किया जा सकता है।

विचारशक्ति और विद्युत-लहर—बीजाक्षरों में सबसे महत्वपूर्ण तथा प्रधान ॐ बीज है। यह आत्मवाचक मूलभूत है। ऊँकार को तेजोबीज, कामबीज और भवबीज माना गया है तथा प्रणव वाचक भी कहा जाता है। श्रीं को कीर्तिवाचक, ह्रीं को कल्याणवाचक, क्वीं को शान्तिवाचक, हं को मंगल-वाचक, क्ष्वीं को योगवाचक, ह्रं को विद्वेष और रोषवाचक, प्रों प्रीं को स्वतन्त्रवाचक और क्लीं को लक्ष्मीप्राप्ति वाचक कहा गया है। ये सभी बीजाक्षर मन्त्रों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप हैं। इनका बार-बार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उच्चारण ही विशेष शक्तिशाली होता है। ये बीजाक्षर दो स्थानों के बीच बिजली का सम्बन्ध स्थापित करने के समान होते हैं। साधक की विचारशक्ति स्विच के समान तथा मन्त्रशक्ति विद्युत्-लहर के समान होती है। इस प्रयोग से जब मन्त्र सिद्ध हो जाता है तब आत्मिक शक्ति से आकृष्ट देवता भी मान्त्रिक के समक्ष आत्मार्पण कर देता है, जिससे उस देवता की सारी शक्ति मान्त्रिक के पास आ जाती है। सामान्य मन्त्रों के लिए विशेष विधि की आवश्यकता नहीं होती है। साधारण साधक बीजमन्त्र और उनकी ध्वनियों के घर्षण से अपने भीतर आत्मिक-शक्ति का प्रस्फुटन करता है। मन्त्रशास्त्र में इसी कारण मन्त्रों के विशेषतः नव भेद हैं। (१) स्तम्भन, (२) मोहन, (३) उच्चाटन, (४ वश्याकर्षण, (५) जृंभण, (६) विद्वेषण, (७) मारण, (८) शान्तिक और (९) पौष्टिक। इनमें एक से तीन ध्वनियों तक के मन्त्रों का विश्लेषण अर्थ की दृष्टि से नहीं किया जा सकता है किन्तु इससे अधिक ध्वनियों के मन्त्रों का विश्लेषण हो सकता है। मन्त्रों से इच्छाशक्ति का परिष्कार या प्रसारण होता है जिससे अपूर्व-शक्ति आती है।

तत्त्व और वर्णसंज्ञक—मन्त्रशास्त्र में बीजाक्षरों के विवेचन के साथ उनके रूपों का भी निरूपण किया गया है। रूपों के अतिरिक्त लिंग, वर्ण, संज्ञक आदि अनेक विवेचन प्राप्त होते हैं। बीजाक्षरों के तत्त्वसंज्ञक ये हैं—अ आ ऋ ह श य क ख ग घ ङ ये वर्ण वायु तत्त्वसंज्ञक हैं। च छ ज झ ञ इ ई ऋ क्ष र ष ये वर्ण अग्नि तत्त्वसंज्ञक हैं। त ट द ड ऊ उ ण लृ व ल ये वर्ण पृथ्वीसंज्ञक हैं, ठ थ ध ढ़ न ए ऐ लृ स' ये वर्ण जल तत्त्वसंज्ञक हैं। प फ ब भ म ओ औ अं अः ये वर्ण आकाश तत्त्वसंज्ञक हैं। अ उ ऊ ऐ ओ औ अं क ख ग ट ठ ड ढ त थ प फ ब ज झ ध य स ष क्ष ये वर्ण पुल्लिग हैं। आ ई च छ ल व ये वर्ण स्त्रीलिंग संज्ञक हैं। इ ऋ लृ लृ ए अः ध भ य र ह द अ ण ड़ ये वर्ण नपुंसक लिंग संज्ञक होते हैं। मन्त्र शास्त्र में स्वर और ऊष्म ध्वनियाँ ब्राह्मण वर्ण संज्ञक हैं। अन्तस्थ और कवर्ग ध्वनियाँ क्षत्रियवर्ण संज्ञक हैं। चवर्ग और पवर्ग ध्वनियाँ वैश्यवर्ण संज्ञक हैं और टवर्ग और तवर्ग ध्वनियाँ शूद्रवर्ण संज्ञक होती हैं।

मन्त्र और शब्द प्रयोग—मन्त्रों के साथ कुछ विशेष सूचक बीजाक्षरों का प्रयोग है। उस प्रयोग के अभाव में मन्त्र भी अपने में अधूरे होते हैं। वे एक जैसे प्रयोग केवल पूर्तिसूचक न होकर विशेष महत्वपूर्ण होते हैं। कुछ विशेष प्रयोजनों के लिए तो वे प्रयोगनिर्णीत हैं, जैसे—वश्याकर्षण और उच्चाटन में 'हुं' का प्रयोग; मारण में फट् का प्रयोग; स्तम्भन में, विद्वेषण और मोहन में नमः का प्रयोग; शान्तिक और पौष्टिक के लिए वषट् का प्रयोग किया जाता है। इन प्रयोगों के अतिरिक्त प्रायः विशिष्ट मन्त्रों के अन्त में 'स्वाहा' शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह प्रयोग भी पापनाशक, मंगलकारक तथा आत्मा की आन्तरिक शान्ति को उद्बुद्ध करने वाला माना गया है। मन्त्र को शक्तिशाली बनाने वाली अन्तिम ध्वनियों में स्वाहा को स्त्रीलिंग, वषट्, फट्, स्वधा को पुल्लिग और नमः को नपुंसक लिंग माना जाता है। मन्त्रसिद्धि के इन प्रयोगों के अतिरिक्त जैन ग्रन्थों में चार पीठों का उल्लेख भी मिलता है—श्मशानपीठ (२) शवपीठ (३) अरण्यपीठ (४) श्यामापीठ। इन चारों पीठों की साधना क्रमशः कठोर से कठोरतम होती है। चारों प्रकार की साधनायें वैयक्तिक स्तर पर ही की जाती हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से इन चारों पीठों के माध्यम से की जाने वाली साधनायें क्रमशः पूर्णता की ओर आगे बढ़ाती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन्त्रविज्ञान में ज्ञान का महत्व—इस मन्त्र शास्त्र के संक्षिप्त विश्लेषण और विवेचन का निष्कर्ष यह है कि मन्त्रों के बीजाक्षरों, सन्निविष्ट ध्वनियों के रूपों, विधान में उपयोगी लिंगों और तत्वों के विधानों एवं मन्त्रों के अन्तिम भाग में प्रयुक्त होने वाले पल्लवों अर्थात् अन्तिम ध्वनि समूहों का ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति के लिए बहुत आवश्यक है। उस ज्ञान के अभाव में व्यक्ति की साधनायें विकसित नहीं हो सकती हैं। भगवान महावीर ने आत्मोत्थान के लिए ज्ञान और क्रिया दोनों को आवश्यक माना है। मन्त्र-साधना में भी साधक ज्ञान और क्रिया दोनों के बल पर ही इच्छित फल प्राप्त कर सकता है। क्योंकि मन्त्र की शक्ति के साथ साधक की शक्ति भी अपना विशेष प्रभाव रखती है। एक ही मन्त्र का फल विभिन्न साधकों को उनकी योग्यता, परिणाम, स्थिरता आदि के अनुसार भिन्न-भिन्न मिलता है। मन्त्र के प्रत्येक अक्षर में स्वतन्त्र शक्ति निहित है, भिन्न-भिन्न अक्षरों के संयोग से भिन्न-भिन्न प्रकार की शक्तियाँ उत्पन्न की जाती हैं। जो व्यक्ति उन ध्वनियों का मिश्रण करना जानता है, वह उन मिश्रित ध्वनियों के प्रयोग से उसी प्रकार के शक्तिशाली कार्य को सिद्ध कर लेता है।

महामन्त्र का माहात्म्य—ध्वनियों के घर्षण से दो प्रकार की विद्युत् उत्पन्न होती है—(१) धन-विद्युत् (२) ऋण विद्युत्। धनविद्युत् शक्ति द्वारा बाह्य पदार्थों पर प्रभाव पड़ता है और ऋण विद्युत् अंतरंग को प्रभावित करता है। वर्तमान में विज्ञान ने भी यह माना है कि पदार्थ दोनों शक्तियों का केन्द्र-स्थल है। मन्त्र का उच्चारण और मनन इन शक्तियों का विकास करता है। जैसे जल में छिपी हुई विद्युतशक्ति जल के मंथन से उत्पन्न होती है, वैसे ही मन्त्र के बार-बार उच्चारण करने से मन्त्र के ध्वनि-समूह में छिपी हुई शक्तियाँ विकसित होती हैं। भिन्न-भिन्न मन्त्रों में यह शक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है तथा शक्ति का विकास भी साधक की क्रिया और उसकी ज्ञान-शक्ति पर निर्भर करता है। जैन-ग्रन्थों में णमोकार मन्त्रकल्प, भक्तामर यन्त्र-मन्त्र, कल्याणमन्दिर यन्त्र-मन्त्र, यन्त्र-मन्त्र संग्रह, पद्मावति मन्त्रकल्प आदि मांत्रिक ग्रंथों के अवलोकन से पता लगता है कि समस्त मन्त्रों के रूप, लिंग, बीज, पल्लव आदि नमस्कार महामन्त्र से ही निकले हैं। नमस्कार महामन्त्र में सभी मातृकी ध्वनियाँ होने से सभी मात्रिकी शक्तियाँ विद्यमान हैं। चौदह पूर्व रूप जैन आगमों का सार रूप यही नमस्कार महामन्त्र है। श्रुतज्ञानावरणीय तथा चारित्रमोहनीय के क्षयोपशम से ही इस महामन्त्र की साधना साकार बन सकती है। सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चरित्र की आराधना द्रव्यश्रुत अर्थात् अक्षर-ज्ञान व द्रव्य क्रिया के माध्यम से सहजतया की जा सकती है। अक्षरज्ञान ही अनुभवज्ञान का आधार है। अक्षरश्रुत के आराधक अनेकानेक व्यक्ति क्रमशः विशिष्ट ज्ञानी बने हैं व बन सकते हैं।

उपसंहार—अस्तु इस प्रस्तुत लेख में वर्णमाला के विषय में यत्किंचित् विवेचन किया गया है, इसका प्रमुखतः जैन ग्रन्थ ही आधार हैं। सभी धर्म, ग्रंथकार, इतिहास विशेषज्ञ, तर्कवादी आदि इस विषय में एकमत हों, यह सम्भाव्य नहीं है। विज्ञान की धारणायें भी इस विषय में भिन्न हो सकती हैं। फिर भी सर्व-सामान्य रूप से माने जाने वाले तथ्य इस लेख में प्रस्तुत किये गये हैं। देवनागरी लिपि की वर्ण-माला प्रस्तुत लेख का प्रतिपाद्य है। क्योंकि यही लिपि सभी लिपियों का मूल स्रोत है। वर्तमान में सभी देशों में प्रचलित लिपियों का आकार-प्रकार व उच्चारण आदि इस लिपि से बहुत भिन्न नहीं है, ऐसा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दृढ़ता के साथ कहा जा सकता है। कालान्तर में हुए लिपिविकास के भेद से आकार-प्रकार के भेद की भिन्नता का बाहुल्य अवश्य हो गया है परन्तु उच्चारण का भेद बहुत अधिक नहीं है, यह निश्चित है। मन्त्र-शक्ति का आधार भी यही लिपि है। गणित तथा तोल-माप का सम्बन्ध इस लिपि से गहरा जुड़ा-हुआ है। इस लिपि के माध्यम से लिखी जाने वाली भाषाओं का शब्दभण्डार अक्षय है, महत्वपूर्ण है। इस लेख में मन्त्रशक्ति विषयक जो भी विवेचन किया गया है वह आध्यात्मिक होने के साथ-साथ भौतिक दृष्टिकोण वाला भी है। मन्त्रशक्ति अपने आप में उभयसिद्धिदाता है। मन्त्रशक्ति से सम्बन्धित नमस्कार महामन्त्र के अंग-प्रत्यंग के रूप में अनेकानेक मन्त्र तथा उनकी विधि व फलाफल यहाँ पर विस्तारभय से नहीं उल्लिखित किये गये हैं। जैन ग्रन्थों में उनका बहुत महत्वपूर्ण व विस्तृत वर्णन है। जहाँ मौलिक रूप से आध्यात्मिक उपलब्धि तथा आनुषांगिक रूप से भौतिक उपलब्धि भी उल्लिखित की गई है। वह उपलब्धि दृढ़ श्रद्धालुओं के लिए आनुषांगिक रूप से भौतिक ऋद्धिसिद्धि देने वाली बनती है, यह निर्विवाद सत्य है। इस लेख में वर्णित तथ्य पाठकगण ज्ञेय भाव से जानेंगे तथा आदेय भाव से ग्रहण करेंगे, ऐसी आशा है। □

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org